**ओ३म्**

**‘जीवात्मा और इसका पुर्नजन्म’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 हम इस विस्तृत संसार के एक सदस्य है। चेतन प्राणी है। हमारा एक शरीर है जिसमें पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आदि अवयव हैं। शरीर से हम सुख व दुख का भोग करते हैं। हम चाहते हैं कि हमें कभी कोई दुख न हो परन्तु यदा-कदा जाने-अनजाने सुख व दुःख आते जाते रहते हैं। अनेक परिस्थितियों में हम स्वयं को स्वतन्त्र पाते हैं परन्तु दुःखों का भोग करने में हम स्वतन्त्र न होकर परवश व परतन्त्र होते हैं। बहुत से दुःखों का कारण हमसे हुई गल्तियां होती हैं जिनको करते समय प्रायः हमें पता नहीं होता कि इनका परिणाम क्या होगा? असफलता व परिणाम पता चलने पर हमें अपने अच्छे व बुरे, सही व गलत निर्णय का पता चलता है। हम अपने ज्ञान व व्यवहार में सुधार भी करते हैं परन्तु भावी जीवन में अनेक अवसरों पर हमारे निर्णय कुछ सही होते हैं व कुछ गलत होते हैं। हमने अपने विद्यार्थी जीवन में कई प्रकार की चंचलताओं के कारण अध्ययन में त्रुटियां व कमियां कीं जिस कारण से हमें बाद में कई बार पश्चाताप भी हुआ। ऐसा क्यों होता है? इन सब को जानने की इच्छा होती है। कई बार प्रश्नों का उत्तर हमें मिल जाता है। कई बार उत्तर नहीं मिलता।

 जब हम अपने जीवन पर विचार करते हैं तो हमें लगता है कि एक **‘मैं’** हूं और एक **‘मेरा शरीर’** है। हम जब किसी से बातें करते हैं तो कहते हैं कि मैं बोल रहा हूं, मै यह स्वीकार करता हूं, यह गलती मैंने की है, मैं प्रातः चार बजे सोकर उठता हूं, रात्रि को मैं 11.00 बजे सोया था, मैंने सन्ध्या व हवन किया है, आदि आदि। इसके अतिरिक्त हम यह भी कहते हैं कि यह मेरा हाथ है, यह मेरी आंखें हैं, यह मेरे कान, नाक, सिर, बाल आदि हैं। इसका विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि **“मैं”** शब्द का प्रयोग हम स्वयं के लिए करते हैं और शरीर के सभी अंगों को मैं न कहकर **“मेरा”** कहते हैं। यह ऐसा ही जैसे कहें कि यह मेरा घर है, यह मेरा अपना कम्प्यूटर है, मेरी पुस्तक व मेरा मोबाइल है। जिस पदार्थ, वस्तु व सामग्री को ‘मेरा’ शब्द से सम्बोधित किया जाता है वह मुझसे भिन्न, पृथक, अलग व अन्य वस्तु होती है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह शरीर मेरा है अवश्य परन्तु यह मैं नहीं हूं, मैं इस शरीर से पृथक व भिन्न कुछ हूं। यह ज्ञात कर लेने के बाद **“मेरा”** को जानने की भी हमें इच्छा हो सकती है। यह तो हम जानते ही हैं कि मैं कोई जड़ या असंवेदशील तत्व नहीं हूं। मैं सुख व दुख, हानि व लाभ, मान व अपमान, सुस्वाद व कुस्वाद को अनुभव करने वाला तत्व व प्राणी हूं। **मेरा एक परिचय तो यह ज्ञात हो गया है कि मैं शरीर से भिन्न एक सत्ता व पदार्थ हूं।** यह भी ज्ञात हो गया कि शरीर के माध्यम से मुझे ही सुख-दुःख की अनुभूति होती है अर्थात् **सुख व दुःख का भोक्ता मेरा शरीर नहीं अपितु केवल मैं हूं।** यह भी हम जान गये हम सभी सुख चाहते हैं, दुःखों को नहीं चाहते हैं, फिर भी हमारे न चाहने पर भी दुःख हमें प्राप्त होते हैं। हम अनेक बातों में स्वतन्त्र हैं परन्तु अनेक बातों में स्वतन्त्र नहीं भी हैं। अतः यह सिद्धान्त सत्य प्रतीत होता है कि **जीव अर्थात् मैं व मेरे समान अन्य सभी मनुष्यादि कर्म करने में स्वतन्त्र हैं तथा उन किये हुए कर्मों के फल भोगने में स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु अनेकों कर्मों के फल भोगने में हम परतन्त्र भी होते हैं।** हमें यह ज्ञान भी होता है कि हमारे अधिकांश सुख व दुःख हमारे इसी जीवन में किये गये अच्छे व बुरे कर्मों व कार्यों का परिणाम होते हैं। एक व्यक्ति ने चोरी की, वह पकड़ा गया और दण्डित हुआ। उसे ज्ञात है कि उसे जो दण्ड मिला वह उसके चोरी के कर्म का मिला है। अन्य मामले में एक व्यक्ति किसी असाध्य रोग से ग्रसित है, वह एक बहुत बड़ा विद्वान है, उसने जीवन में स्वास्थ्य के सभी नियमों का पालन किया है, फिर भी उसे वह असाध्य रोग हो गया। उसी व्यक्ति की आयु से अधिक स्वास्थ्य के नियमों पर कोई विशेष ध्यान न देने वालों को वह रोग नहीं हुआ, वह स्वस्थ व प्रसन्न हैं, इसका कारण पता न चलने पर वह चिन्तित होता है कि ऐसा क्यों है। ऐसे व अन्य अनेक दुःखों जिसमें ढूढंने पर भी प्रत्यक्ष व अनुभव सिद्ध कारण का पता न चले तो वह उसका पूर्व जन्म का किया हुआ कर्म प्रायः मान लिया जाता है जिसकी विवेचना होने पर वह सत्य प्रतीत होता है क्योंकि अन्य कोई कारण उसके रोग का विदित नहीं होता। पूर्व जन्म मानने वाले तो यह मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं परन्तु जो पूर्व जन्म नहीं मानते उन्हें बहुत सी बातों का उत्तर नहीं मिल पाता। **अतः ऐसे उदाहरण पूर्व जन्म व पुनर्जन्म के पोषक होते हैं।**

 हमारे वैदिक साहित्य में तीन सत्ताओं को अनादि व नित्य स्वीकार किया गया है जो ईश्वर, जीव व प्रकृति हैं। जब हम सृष्टि में इनका निरीक्षण करते हैं तो यह तीनों ही प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाणों से सत्य सिद्ध होते हैं। इन तीन नित्य, अनादि, अनुत्पन्न व चेतन-जड़ सनातन तत्वों में हम जीव हैं। हमारी ही तरह सभी मनुष्यों व प्राणियों में भौतिक देह से भिन्न क्रिया करने वाला तत्व **‘जीव’** ही है। यहां हम गुण व गुणी के सिद्धान्त को रखकर जीवात्मा के पृथक अस्तित्व को समझ सकते हैं। जीवित मनुष्य के शरीर में इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त एक चेतन, अल्पज्ञ सूक्ष्म, एकदेशी तत्व व सत्ता प्रत्यक्ष अनुभव होती है। यही जीव है। इसका कारण है कि जब मृत्यु होती है तो मृतक शरीर में जीव के गुण, उसका ज्ञान व क्रियायें प्रकाशित होतीं हैं। मृतक शरीर में न कोई इच्छा, न किसी से द्वेष, न कोई सुःख, न कोई दुःख और न किसी पर का ज्ञान व सेवेदना परिलक्षित होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु होने पर इन गुणों का स्वामी व अधिपति कोई तत्व, सत्ता अथवा पदार्थ शरीर से निकल गया है। इसे ऐसा समझ लीजिये कि एक साईकल के टायर में हवा भरी हुई है। वह साईकिल भली प्रकार से चालक के द्वारा चलाई जाती है। उसके पहिये के टायर व ट्यूब की यदि हवा निकल जाये तो साईकिल भली प्रकार से नहीं चलती है। इसका अर्थ यह हुआ कि साईकिल के पहियों में हवा भरी होने से ही साईकिल चल रही थी। अब हवा निकल गई है, अतः अब नहीं चल रही है। इसलिये पहिये की दृष्टि से हवा एक गुणी पदार्थ है जो साईकिल के चलाने में आवश्यक व सहायक होता है। शरीर में आत्मा भी कुछ अधिक ही ऐसा ही कार्य करता है। साईकिल व हवा, दोनों के जड़ पदार्थ होने से वह चल भी सकती है, परन्तु जीवात्मा तो शरीर के सभी ज्ञानादि गुणों व क्रियाओं का संचालक होता है। उसके निकल जाने पर वह शरीर जीवित शरीर की तुलना में सर्वथा महत्वहीन हो जाता है। अतः शरीर में ज्ञान व कर्म रूपी जो गुण है वह जीवात्मा की विद्यमानता होने पर होते हैं और न होने पर नहीं होते। इस कारण से जीवात्मा ही उन गुणों का ग्राहक व वाहक है अर्थात् यह सभी गुण उसी के होते है। इससे जीवात्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

 जीवात्मा के अस्तित्व व उसके द्वारा जन्म-मरण व पुनर्जन्म पर कुछ और चर्चा करते हैं। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि जो **इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसी को वह जीव मानते हैं।** उन्होंने यह भी लिखा है कि **जगत् में सुख व दुःख देख कर पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।** इसका कारण यह है कि एक बच्चा निर्धन माता-पिता के जन्म लेकर अभावजन्य दुःख भोगता है और अन्य धनी माता-पिता के यहां जन्म लेकर पहले ही दिन से सुख भोगता है। **इस असमानता का कारण पूर्वजन्म ही सिद्ध होता है।** यदि पूर्वजन्म व उनका संचित कर्मों का खाता या प्रारब्ध न होता तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के अनुसार दोनों बच्चों को सुख व दुःख एक समान रूप से मिलने चाहिये थे। सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द ने प्रश्न उठाया है कि शरीर में जीवात्मा विभु है वा परिछिन्न। **इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि जीव शरीर में परिछिन्न है।** जो विभु अर्थात् व्यापक होता तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिए जीव का स्वरूप अल्पज्ञ अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मर, अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक स्वरूप है। इसीलिये जीव और परमेश्वर का परस्पर व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है अर्थात् ईश्वर जीवात्मा में व्यापक है और जीव ईश्वर में व्याप्य है अर्थात् ईश्वर जीव के बाहर व भीतर विद्यमान है। उन्होंने यह भी लिखा है कि ब्रह्म और जीव एक नहीं हैं अपितु अलग-अलग और पृथक-पृथक हैं। इसका एक कारण दोनों में कुछ गुणों की समानता और अनेक गुणों की असमानता व भिन्नता है। जीव अल्पज्ञ सिद्ध है। अल्पज्ञ अल्प व सीमित ज्ञान से युक्त सत्ता होती है। ज्ञान के साथ क्रिया का होना आवश्यक है। अतः जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुण ज्ञान व कर्म को फलीभूत करने के लिए ईश्वर की कृपा से जन्म ग्रहण करता है और ज्ञान को बढ़ाकर पाप व पुण्य कर्मों को करता है। पुण्य का स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का अनुष्ठान करना है। पाप पुण्य से उलटा और मिथ्याभाषणादि करना है। जीवात्मा मन, इन्द्रिय और शरीर से जो चेष्टाविशेष करता है, वह कर्म कहलाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का यथा क्रियमाण कर्म, संचित कर्म और प्रारब्ध कहलाता है। जीवात्मा से परलोक व लोक भी जुड़ा हुआ है। **परलोक सत्यविद्या से परमेश्वर की प्राप्तिपूर्वक इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होना है। अपरलोक वा लोक परलोक से उलटा जिसमें दुःख-विशेष भोगना होता है उसे कहते हैं।** जीवात्मा जब मनुष्य व इतर प्राणी के शरीर के साथ संयुक्त होकर कर्म करने में समर्थ होता है तो उसे उसका **‘जन्म’** कहते हैं। जिस शरीर को प्राप्त कर जीव क्रिया व कर्म आदि करता है, उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है, उसको **‘मरण’** वा **‘मृत्यु’** कहते हैं। **विशेषसुख और सुख की सामग्री का जीव को प्राप्त होना है वह ‘स्वर्ग’ है तथा विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होने को ‘नरक’ कहते हैं। पुनर्जन्म के विरोधियों की प्रमुख दलील होती है कि पिछला जन्म स्मरण क्यों नहीं है? इसका उत्तर है कि जीव में भूलने की प्रवृत्ति होती है।** कल, परसों व उससे पूर्व के दिनों में हमनें कब-कब क्या-क्या खाया और विगत पन्द्रह दिनों में व उससे पूर्व किस दिन कौन से वस्त्र पहने, किस-किस से मिले, क्या-क्या काम किये, यह ज्ञान नहीं रहता। 10 मिनट किसी से बात करने पर यदि उस मनुष्य को अपनी बातों को दोहराने के लिये कहा जाये तो वह अपने बोले गये वाक्यों के शब्दों को उनके क्रमानुसार ठीक-ठीक नहीं सुना सकता। जब कुछ ही घंटे पहले की, दिन व महीनों की बातें भूल जाता है तो पूर्व जन्म की बातें याद नहीं होने से यह नहीं माना जा सकता कि वह सब बातें याद होनी ही चाहियें। पूर्व जन्म में हमें जो-जो ज्ञान था वह पूर्वजन्म के शरीर के निमित्त से था जो कि मृत्यु होने पर नष्ट हो जाता है। अतः पूर्वजन्म का भौतिक शरीर, मन व बुद्धि आदि अवयव जब नहीं रहे तो उस ज्ञान का विस्मृत होना सम्भव कोटि में है, असम्भव नहीं। मनुष्यों के दो जन्मों के बीच मृत्यु आ फंसी है और मृत्यु का होना अर्थात् महाव्यावृत अन्धकार के बीच में गिरना है जिससे विस्मृति हो जाती है।

 पुनर्जन्म विषयक दो उदाहरण और प्रस्तुत हैं। मन के धर्म पर विचार कीजिए। मन का स्वभाव ऐसा है कि वह सन्निहित पदार्थ के विषय में राग व द्वेष उत्पन्न करता है। सान्निध्य छूटने से मन को उसका विस्मरण होता है। फिर पूर्व जन्मावस्था में दूरगत पदार्थ-विषयक अर्थापन्न ज्ञान यदि वर्तमान जन्म में आत्मा को विस्रमण होता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? अर्थात् कुछ आश्चर्य नहीं। दूसरा उदाहरण-पाठशाला में कुछ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते रहते हैं। उनमें से कुछ विद्यार्थियों को अपने विषयों की समझ तत्काल व तत्क्षण उत्पन्न हो जाती है, दूसरों को समझने में कुछ विलम्ब लगता है और तीसरे को तो उसी विषय को समझने में बड़ी ही कठिनाई होती है। इस प्रकार यहीं-के-यहीं ही उत्तम बुद्धि, मध्यम बुद्धि और अधम बुद्धि, ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार दिखाई देते हैं तो फिर भला मरने के पीछे पूर्व जन्म के ज्ञान व उसकी स्मृति की उपस्थिति के विषय में कितनी दिक्कत होती होगी, यह सहज ही ध्यान में आ सकता है। इससे जन्म एक ही है अर्थात् पूर्व व पुनर्जन्म नहीं है, ऐसा मानना पूर्णतया युक्ति विरूद्ध है। ऐसे और उदाहरण देकर पूर्व जन्म की स्मृति न होने के कारण को सिद्ध किया जा सकता है। संसार का नियम है कि अभाव से कोई नया पदार्थ बनाया नहीं जा सकता और किसी पदार्थ को सर्वथा नष्ट अर्थात् उसका अभाव नहीं किया जा सकता है। जीवात्मा कुछ इसी सिद्धान्त के आधार पर अजन्मा, अनुत्पन्न, अनादि, अनन्त, नित्य कहलाता है। अब इसके सनातन व अनादि होने से इसका जन्म लेना वा होना अवश्यम्भावी है। नहीं होगा तो सर्वशक्तिमान ईश्वर पर आरोप आयेगा, अतः जीवात्मा का जन्म होना सत्य सिद्धान्त एवं अवश्यम्भावी है। इसने जन्म लेकर जो सत्यासत्य आचरण वा पापपुण्य कर्म इस जन्म व पूर्वजन्मों में किये हैं, उनका फल तो इसे भोगना ही होगा। मृत्यु होने से जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के साथ भौतिक शरीर का त्याग करता है। उसे इस लेख में गुणी नाम से कहा गया है। इसके अपने जो गुण होते हैं, जीवात्मा के साथ उनके निकल जाने से ही शरीर निष्क्रिय हो जाता है। उसकी अन्त्येष्टि करने पर वह मृतक शरीर अपने कारण तत्वों पंचभूतों में विलीन हो जाता है। इस कारण संसार के तत्वों व पदार्थों में न किंचित वृद्धि होती है और न हि ह्रास। **वेदाध्ययन व अनुसंधान करने पर जीवात्मा एक चेतन तत्व, एकदेशी, अल्पज्ञ, राग-द्वेष-काम-क्रोध से आबद्ध, अनादि, अनुत्पन्न, आकाररहित बिन्दूवत, सूक्ष्म, कर्म-फल व जन्म-मृत्यु में बन्धा, सुख व दुःख का भोक्ता, ईश्वर की सन्ध्योपासना व यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों को करके मुक्ति को प्राप्त होने वाला सिद्ध होता है।** **यह जीवात्मा का वैज्ञानिक स्वरूप है।** हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि संसार में आध्यात्म के क्षेत्र में मिथ्या ज्ञान भरा होने से हमारे वैज्ञानिक विभिन्न धर्मों से जुड़े लोगों की बातों को स्वीकार नहीं करते। यदि उनके सम्मुख वेदों की सत्य व तर्क-युक्ति प्रधान मान्यताओं को रखा जाये तो उनके उत्तर व काट न होने से उन्हें सत्य वैदिक मान्यताओं को स्वीकार करना ही होगा। तब वह योग-ध्यान व समाधि को प्राप्त कर इससे लाभ अवश्य ही उठायेंगे। ऐसा कौन मनुष्य है जो अपने जीवन में अमृत को पाना नहीं चाहेगा। अमृत का अर्थ मोक्ष का असीम सुख व आनन्द की स्थिति है। यह विज्ञान से कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। यह केवल वैदिक विचारधारा को उसके यथार्थ रूप में जानकर आचरण करने से ही प्राप्त होगी। हम आशा करते हैं कि पाठकों को जीवात्मा का स्वरूप व पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार्य होगा।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**